RESEARCH PAPER

RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
e-ISSN: 2349-7637 | Vol.09 | Iss.02 | February 2022 | pp. 34-38
Double-Blind Peer Reviewed/ Refereed Journal

Contemplation of 'Jiva' of Saint DaduDayal

संत दादूदयाल का 'जीव' विषयक चिंतन

*Sunil Kumar Chhipa

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Abstract

The basic concept of Indian philosophy 'Jiva' is also known as soul and soul. It is inherent behind every action of man, just as there is 'Brahm' behind the activities of the universe. It is a part of 'Brahm' itself, therefore it is endowed with its nature-characteristics. It is eternal, conscious and happy, and like its part, it is freer, pure, niranjan and niramay.

Keywords: *'Jiva', Jivatma, Atman, Brahman, Advaita, Formless, Ignorance*

Abstract in Hindi

भारतीय दर्शन की आधारभूत अवधारणा 'जीव' को जीवात्मा[1] व आत्मा[2] के नाम से भी जाना जाता है। यह मनुष्य के प्रत्येक कर्म के पीछे वैसे ही निहित है जैसे ब्रह्माण्ड की गतिविधियों के पीछे 'ब्रह्म' है। यह 'ब्रह्म' का ही अंश है इसलिए उसके स्वरूप–लक्षण से संपंन है। यह नित्य, चेतन एवं सुखराशि है और अपने अंशी की भाँति निर्विकार, निर्मल, निरंजन और निरामय भी है।

Keywords: 'जीव', जीवात्मा, आत्मा, ब्रह्म, अद्वैत, निराकार, अज्ञान।

Article Publication

Published Online: 20-Feb-2022

***Author's Correspondence**

Sunil Kumar Chhipa

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

suneelkumarchhipa07@gmail.com

10.53573/rhimrj.2022.v09i02.007

© 2022 The Authors. Published by RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

'जीव' को अपने कर्म–फल–भोग के लिए किसी–न–किसी भोगायतन का आश्रय लेना पड़ता है, भोगायतन का ही नाम 'शरीर' है। 'जीव' नश्वर प्रकृति वाले शरीर के भीतर स्थित वह तत्व है जो कभी नहीं बदलता, शरीर के साथ इसकी उत्पत्ति और उसके विनाश के साथ इसका विनाश नहीं होता। यह या तो अस्तित्व के बंधन से मुक्ति प्राप्त कर लेता है या फिर एक नए जीवन में प्रवेश करता है। 'जीव' एवं 'शरीर' तब तक परस्पर मिले हुए दिखायी देते हैं जब तक अन्तः करण अज्ञान से आवृत होता है–

आत्मा शरीर दोऊ एकमेक देखियत,
जब लग अन्तहकरन मैं अज्ञान है।[3]

जीव कर्म करने में स्वतंत्र किंतु फल भोगने में परतंत्र होता है। कर्मवश ही उसका विविध योनियों में जन्म होता है, कर्म से ही उसे सद्गति प्राप्त होती है। नैतिक रूप से जीव के कर्म दो प्रकार के माने जाते हैं– शुभ और अशुभ। इन्हीं को क्रमशः पुण्य और पाप कहा जाता है। इनके फल सुख और दुख है। 'जीव' को शुभ–अशुभ कर्मों के अनुसार फल देने वाला नियामक 'ब्रह्म' है।

अद्वैत के प्रतिपादक शंकराचार्य 'ब्रह्म' के अलावा किसी अन्य पदार्थ की यथार्थ सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। वल्लभाचार्य 'जीव' को अनादि कहते हैं किंतु ब्रह्म से पृथक नहीं मानते। उनके मत में जीवावस्था में ब्रह्म का सत् एवं चित्त रूप रहता है केवल आनन्द की शक्ति तिरोहित हो जाती है। निम्बार्काचार्य 'जीव' को ब्रह्म का अंश मानते हैं किंतु इस रूप में नहीं की वह ब्रह्म का अवयव है क्योंकि ब्रह्म निरवयव है। 'जीवात्मा' ब्रह्म का कार्य है और ब्रह्म से पृथक उसका कोई अस्तित्व नहीं है। संत दादूदयाल आत्मतत्व को 'जीव' की संज्ञा देते हैं। वे इसे एक स्थायी तत्व मानते हैं जो बाहरी दृश्यमान जगत् के विविध परिवर्तनों

के भीतर से गुजरता हुआ सदा एक–रस रहता है। इसके रूप में ब्रह्म ही देहधारियों के हृदय में स्थित होकर यन्त्र की भाँति उन्हें चलाता है।

दादू 'जीव' के शुभ–अशुभ कर्मों को संसार में उसके बारम्बार आवागमन का कारण मानते हैं और उन कर्मों का सृजक स्वयं परमात्मा को स्वीकार करते हैं।[4] उनका मानना है कि प्राणी के अविद्या कर्मों से बन्धे रहने तक ही उसे 'जीव' कहा जा सकता है, कर्मों से मुक्त होने पर वह ब्रह्म ही है–

दादू बंध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान।

दादू दोनों देखिये, दूजा नाहीं आन।।[5]

'जीव' जब तक ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि साधनों के माध्यम से आत्म स्वरूप में स्थिर नहीं होता है, तब तक चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है वहीं जब वह साधना की परिपक्व अवस्था में परमात्मा से अभेद हो जाता है तब उसमें और 'ब्रह्म' में भिन्नता नहीं रह जाती है–

काचा उछलै ऊफणै, काया हांडी माँहि।

दादू पाका मिल रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाँहि।।[6]

जिस अन्तः करण में आत्मा का साक्षात्कार होता है, वहाँ ही परब्रह्म का साक्षात्कार होता है और ऐसे ज्ञान से जीव–ब्रह्म का भेद रूप भ्रम नष्ट हो जाता है–

कर्मों के बश जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म।

जहं आतम तहं परमात्मा, दादू भागा भ्रम।[7]

हिंदू धर्म शास्त्रों और पुराणों में चौरासी लाख योनियों का उल्लेख मिलता है। इनमें नौ लाख जलचर, बीस लाख स्थावर या पेड़–पौधे, ग्यारह लाख कृमि या कीड़े–मकौड़े, दस लाख नभचर, तीस लाख थलचर और शेष चार लाख देवता–मनुष्य आदि योनियाँ मानी गयी है। इन योनियों के सभी जीव देहाध्यास आदि शरीर के गुणों में बंधे होने से बार–बार जन्म व मृत्यु को प्राप्त होते है–

काया के सब गुण बंधे, चौरासी लाख जीव।

दादू सेवक सो नहीं, जे रंग राते पीव।।[8]

सभी 'जीव' अपने कर्मों के अनुसार गर्भवास में जन्म लेते हैं तथा 'ब्रह्म' का अंश होने से एक समान है पर जन्म लेने के पश्चात् वे वर्ण, जाति, धर्म, आदि के आधार पर अपने अलग–अलग नाम रखकर अलग–अलग हो जाते हैं। जीवों के बीच भिन्नता दिखाई देने का कारण माया है। ब्रह्म, माया और जीव दोनों का अधिष्ठान है–

दादू जिन मुझको पैदा किया मेरा साहिब सोई।

मैं बंदा उस राम का जिनि सिरज्या सब कोई।।[9]

संत सुंदरदास श्रवण, मनन, निदिध्यासन से 'जीव' द्वारा 'ब्रह्म' की प्राप्ति संभव मानते हैं–

सुन्दर या साधन बिना, दूजौ नहीं उपाइ।

निस दिन ब्रह्म विचार तैं, जीव ब्रह्म हवै जाइ।।[10]

आगे वे 'ब्रह्म' और 'जीव' को अभेद मानते हुए कहते हैं–

तूं ही तूं हीं तूं हीं तूं, जोई तूं है सोई हूं।। टेक।।[11]

दादू का मानना है कि सांसारी प्राणी निम्न प्रकृति युक्त होने से निकृष्ट योनि भूत के समान हैं। उन्हें जब ब्रह्मवेत्ता सतगुरू का सान्निध्य प्राप्त होता हैं तब वे क्रमशः 'देव' और 'ब्रह्म' स्वरूप हो जाते हैं। जीव की उत्तम, मध्यम व निकृष्ट श्रेणियाँ मानी गयी है। उसकी भावना और वाणी का आधार यही श्रेणियां बनती है–

दादू जैसे माँही जीव रहै, तैसी आवै बास।

मुख बोलै तब जानिये, अंतर का परकास।।[12]

सच्चे सन्त शरीर के काम–क्रोधादि गुणों को अपने वश में रखते हैं जिससे वे आकार रहित निरंजन परमात्मा को प्राप्त होते हैं–

काया के वश जीव सब, ह्वै गये अनन्त अपारं

दादू काया वश करै, निरंजन निराकार।।[13]

दादू की 'जीव' विषयक अनुभूतियाँ अद्वैतवादी दर्शन से पर्याप्त साम्य रखती है किन्तु यदि कोई साधक आत्मतत्व सम्बन्धी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए पृथकत्व का अनुभव नहीं करेगा तब तक अभिव्यक्ति सम्भव हो ही नहीं सकती। जब समस्त वृत्तियाँ आत्मतत्व में केन्द्रित हो जाती है तब एकत्व की उस स्थिति में अभिव्यक्ति असम्भव हो जाती है क्योंकि उस स्थिति में ज्ञेय और ज्ञाता दोनों एक हो जाते हैं। फिर कौन किसको जाने ? इस समस्या से निवृति पाने के लिए दादू ने परमात्मा से परे जीव की कल्पना की है और उसे अनेक नामों से सम्बोधित कर उससे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की हैं। यथा–

आत्माः परब्रह्म, आत्मा और जीव में तात्विक भेद नहीं है। जब 'आत्मा' उपाधि सम्पर्क के कारण अन्तःकरण से वाछिन्न होकर कर्मफल की भोक्ता हो जाती है तब वह 'जीव' कहलाती है और जब उपाधि सम्पर्क रहित शुद्ध चैतन्य की स्थिति में होती है तब वह 'ब्रह्म' कहलाती है। उपनिषदों में 'ब्रह्म' और 'आत्मा' की एकता को प्रतिस्थापित करने का जो कार्य अद्वैती भाव से फलीभूत हुआ, उसी आधार पर दादू ने आत्मा को परमात्मा का अंग मानते हुए अंश–अंशी भाव को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है। वे आत्मा को अजर–अमर बताते हुये बड़े स्पष्ट रूप से कहते हैं–

ऐसा तत्व अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई।। टेक।।

पावक जरै न मारयो मरई, काटयो कटै न टारयो टरई।। 1 ।।

अखिर खिरै न लागै काई, शीत घाम जल डूब न जाई।। 2।।

माटी मिलै न गगन विलाई, अघट एक रस रह्या समाई।। 3।।

ऐसा तत्व अनूपम कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये।। 4।।[14]

अर्थात् आत्मा अनुपम है, यह न तो मरती है, न जीती है और न कलंकित होती है। इसे न अग्नि जला सकती है, न तीक्ष्ण हथियार काट सकता है। यह अनश्वर, अविनासी है और अपने सहज स्वरूप से व्यापकत्व एवं ब्रह्मकत्व की परिचायक है।

दादू पर वेदान्त का पूर्ण प्रभाव है। वे मानते हैं कि आत्मा परमात्मा का अंश है और अंश का अपने मूल में मिलना नियति है–

परमात्मा सौं आतमा–ज्यौं पाणी में लौंण।

दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कौंण।।[15]

आत्मा परमात्मा की उत्तरापेक्षी है इसलिए शरीर का मिटना या मृत्यु एक यथार्थ सत्य है। यह परमात्मा से अकेले ही मिल सकती है व अपने कर्मफल का लेखा–जोखा भी इसे अकेले ही देना होता है।

सेवकः दादू जीव को परमात्मा के सच्चे सेवक के रूप में स्वीकार करते हैं। यथा–

दादू सोई सेवक राम का, जिसे न दूजी चिंत।

दूजा को भावे नहीं, एक पियारा मिंत।।[16]

विरहिणीः दादू की भक्ति में माधुर्य भावना भी प्रतिबिम्बित होती है। वे अपने आराध्य को पिव, साजनिया आदि कहकर पुकारते हैं, उसके विरह में व्याकुल होकर तड़पते है–

पिव बिन पल पल जुग भया कठिन दिवस क्यों जाय।

दादू दुखिया राम बिन काल रूप सब खाय।।[17]

उनके साहित्य में मर्मस्पर्शी भावों के साथ व्रीव विरह की भी अभिव्यंजना मिलती है। 'जीवात्मा' द्वारा अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी 'ब्रह्म–साक्षात्कार' नहीं होने पर वह जीवन की सार्थकता पर ही प्रश्न–चिह्न खड़ा कर देती है–

तुम बिन कहु क्यों जीवन मेरा, अजहूँ न देख्या दर्शन तोरा।[18]

दादू का ब्रह्म के प्रति प्रेम अथक एवं अन्नय है। जिसे उन्हीं के शब्दों में कहा जा सकता हैं कि–

तुम को हमसे बहुत हैं, हमको तुमसे नाँहि।

दादू को जनि परिहरै, तूं रहू नैनहुँ माँहि।।[19]

सुन्दरीः 'जीवात्मा–सुंदरी' का दृढ़ विश्वास है कि उसका सब–कुछ परमात्मा का है, बस परमात्मा उसके हैं–

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिण्ड प्राण।

सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान।।[20]

दादू बाहरी उपासना पद्धति की तुलना में निष्काम प्रेम को महत्व देते हैं और सर्मपण से ही ईश्वर प्राप्ति संभव मानते हैं–

प्रेम प्रीति स्नेह बिन, सब झूठे श्रृंगार।

दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भरतार।।[21]

उनका हृदय निरन्तर एक वियोगी–विरही की अंतर–पीड़ा को सहन करते हुए अंत में संयोग से आनन्दित हो उठता है–

सुन्दरि को सांई मिथ्यां, पाया सेज सुहाग।

पीव सौं खेले प्रेम रस, दादू मोटे भाग।।[22]

बटाऊः दादू 'जीव' को 'पथिक' का रूपक प्रदान करते हुए कहते हैं कि हे जीव पथिक! तुम्हें इस नश्वर शरीर को छोड़कर एक न एक दिन अवश्य जाना होगा इसलिए तुम्हें सुख–निद्रा को त्यागकर जन्म–मरण चक्र से मुक्ति के निमित्त 'निराकार ब्रह्म' को अपने हृदय में धारण चाहिए–

बटाऊ ! चलणा आज की काल्ह।

समझि न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम सँभाल।। टेक।।

जैसे तरूवर वृक्ष बसेरा, पक्षी बैठे आइ।

ऐसे यहु सब हाट पसारा, आप आपको जाई।। 1।।

कोई नहिं तेरा सजन संगाति, जनि खेवै मन मूल।

यहु संसार देख जनि भूलै, सब ही सैमल फूल।। 2।।

त्न नहिं तेरा धन नहिं तेरा, कहा रह्यो इहिं लाग।

दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै, काहे न देखै जाग।। 3।।[23]

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम देखते हैं कि दादू का एकमात्र लक्ष्य है मोक्ष। मातृ गर्भ में रहकर नाना कष्टों को झेलना उन्हें स्वीकार्य नहीं फिर सत्य, कर्म और ईश्वर की भक्ति से ही उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सकता है तो मिथ्या क्षणभंगुर शरीर और मिथ्या सगे–सम्बन्धियों के मोह का परित्याग करना ही परम लक्ष्य होना चाहिए, यह दादू का स्पष्ट मत है।

संदर्भ–

1. स्वामी विद्यानन्द सरस्वतीः दिव्य ज्ञान, प्रकाशकः विजय कुमार, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, संस्करणः 1998 ई., पृ. 51
2. डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्राः रॉयल–मानक विशाल हिन्दी शब्दकोश (हिन्दी–हिन्दी शब्दकोश), भाग–1, अरिहन्त पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2001 ई., पृ. 357
3. संपादक व व्याख्याकार म. बजरंगदास शास्त्रीः सवैया ग्रन्थ (सुन्दरविलास), श्री दादूवाणी परिषद्, नरैना, जयपुर, द्वि. सं.: 2013 ई., पृ. 216
4. कर्म फिरावे जीव को, कर्मों को करतार।
   करतार को कोई नहीं, दादू फिरावन हार।।
   भगवान सहाय आर्यः दादू अमर संदेश, प्रकाशकः भगवान सहाय आर्य, श्री माधोपुर, राज., प्रथम संस्करणः 2015 ई., पृ. 17
5. संत चेतनदास स्वामीः श्री दादूवाणी–श्री दादू तत्वार्थ प्रकाशिका, सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट), जयपुर, प्रथम संस्करणः 2014 ई., पृ. 460
6. वही, पृ. 460
7. वही, पृ. 460
8. वही, पृ. 459

9. भगवान सहाय आर्यः दादू अमर संदेश, पृ. 64
10. सं. म. बजरगंदास शास्त्रीः ज्ञानसमुद्र एवं साषी ग्रन्थ, श्री दादूवाणी परिषद्,नरैना, जलपुर, प्रं. सं.ः पृ. 325
11. सम्पादक एवं व्याख्याकार म॰ बजरंगदास स्वामीः सुन्दर पदावलि व फुटकर काव्य, श्रीदादूवाणी परिषद्, नरैना, (राजस्थान), 2014 ई., पृ. 47
12. संत चेतनदास स्वामीः श्री दादूवाणी, पृ. 458
13. वही, पृ. 459
14. वही, पृ. 662
15. वही, पृ. 125
16. डॉ. नवीन नन्दवानाः संत दादूदयाल जीवन और साहित्य, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करणः 2018 ई., पृ. 15
17. भगवान सहाय आर्यः दादू अमर संदेश, पृ. 18
18. संत चेतनदास स्वामीः श्री दादूवाणी, पृ. 773
19. वही, पृ. 509
20. सम्पादक एवं व्याख्याकार स्वामी जीवानन्द जी दादूपंथीः श्री दादूवाणी, श्री दादू ज्ञान मंदिर, जयपुर, द्वि. सं. 2005 ई., पृ. 623
21. संत चेतनदास स्वामीः श्री दादूवाणी, पृ. 427
22. वही, पृ. 481
23. वही, पृ. 600